के संदर्भ में विश्वामित्र ने अपने कुछ पुत्रों को अन्ध्र, शबर, पुण्ड्र, पुलिन्द, मूतिब हो जाने का शाप दिया। ये सम्भवतः समाज के हीन वर्ग के समुदाय रहे होंगे।

निषादों का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद के रूद्राध्याय में हुआ है तथा संहिताओं में शतरूद्रिय स्तुतिमाला के संदर्भ में निषादों के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित किया गया है। निषादों की आस्ट्रिक प्रजातीय प्रकार का बताया गया है। ये सम्भवतः आर्य आधिपत्य के अन्तर्गत नहीं थे। लाट्यायन श्रौतसूत्र में निषादधाम तथा कात्यायन श्रौतसूत्र में निषाद स्थपति का विवरण मिलता है। विश्वजित् यज्ञ के संदर्भ में निषादों के साथ अल्पकालीन निवास की व्यवस्था भी की गयी है। इस काल में निषादों की अस्पृश्यता का उल्लेख नहीं मिलता है, जो अग्रगामी काल में दिखायी पड़ने लगती है।

कुछ ऐसे प्रकरण भी उपलब्ध हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सामाजिक नेतृत्व तथा प्राधान्य को लेकर स्वयं शासक वर्ग (ब्राह्मण एवं क्षत्रियों) में भी कभी–कभी अन्तर्विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाया करती थी। कुछ अवसरों पर ब्राह्मण को क्षत्रियों से श्रेश्ठ बताया गया है और कुछ स्थलों पर राजा को ब्राह्मण से श्रेष्ठ बताकर उसे दबाने की चेष्टा व्यक्त की गयी हैं। एक ओर पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों ने अपना राजा सोम को बाताकर राजा के राजनीतिक प्रभुत्व को हेय बताने का प्रयास किया तो दूसरी ओर उपनिषद्कालीन द्वात्रिय राजाओं ने, ब्रह्मविद्या के क्षेत्र में, स्वयं को ब्राह्मणों से श्रेष्ठ सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की। यदा–कदा उत्पन्न हो जाने वाले इस अन्तर्विरोध के बावजूद ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के पारस्परिक अन्तरवलम्बन और सहयोग पर ही विशेष बल दिया है।

सन्दर्भ–

1. आर. के. मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता, अनु0 वासुदेवशरण अग्रवाल।
2. विजय बहादुर राव, उत्तर–वैदिक समाज एवं संस्कृति।
3. आर. एस. शर्मा, शूद्रज इन ऐश्येण्ट इण्डिया।
4. एन. के. दत्त, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑव कास्ट इन इण्डिया, वाल्यूम1।
5. आर. सी. मजूमदार द्वारा सम्पादित वैदिक एज।
6. ऐत. ब्रा0 40.1; जोगीराज बसु, इण्डिया ऑव द एज ऑव द ब्राह्मण।
7. ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑव कास्ट इन इण्डिया, वाल्यूम–1
8. रामगोपाल, इण्डिया ऑव वैदिक कल्पसूत्रज।
9. विवेकानन्द झा, स्टेजेज इन दी हिस्ट्री औव अनटचेबुल्स : द इण्डियन हिस्टॉरिकल रिव्यू, वाल्यूम–2, नवम्बर 1, जुलाई, 1975।
10. इण्डियन हिस्टॉरिकल रिव्यू, वाल्यूम–2, नवम्बर 1, जुलाई 1975।

*****

मार्कण्डेयपुराण में वर्णित विष्णु की माया स्वरूपा प्रकृति का वर्णन

डॉ. प्रतिभा मिश्रा*

मार्कण्डेयपुराण में वेदान्त, योग एवं सांख्य दर्शन अपने पूर्ण वैभव के साथ वर्णित हैं। इनका क्रमशः वर्णन इस पुराण में एक विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया है। इस पुराण के अनुसार इन तीनों के ज्ञान से ही मुक्ति सम्भव है। इसमें वेदान्त के द्वारा ''ब्रह्म'' व ''जीव'' का प्रतिपादन किया गया है, लेकिन अन्तः करण के निर्मल एवं शान्त होने पर ही ब्रह्म का प्रतिबिम्ब स्पष्ट एवं स्थिर हो सकता है। अतः चित्त की स्थिरता के लिए योग का उपदेश किया गया है। योग चित्त की चंचलता का निरोधक है। तत्पश्चात् सांख्य द्वारा प्रकृति–पुरूष विवेक–ज्ञान जो मोक्षस्वरूप है, का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण में जो तीन दर्शनों के समन्वय का प्रयास किया गया है, वह अद्भुत है एवं दुलर्भ है।

प्रकृति और उसके तीन गुणों का स्वरूप

दर्शन के विवेच्य विषयों में प्रकृति का प्रमुख स्थान है। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासादि शास्त्रों ने इसे ही माया, मूल–प्रकृति, महामाया, योगमाया आदि नामों से कहा है। अद्वैत वेदान्त में यहीं प्रकृति मायारूप से वर्णित हुई है। सांख्य में, ''अव्यक्त'' और ''प्रधान'' प्रकृति की ही अपर संज्ञाएँ हैं। यह प्रकृति समस्त जड़ जगत् का मूल कारण है। समस्त विश्व का कारणभूत प्रथम मौलिक तत्त्व होने से इसे ''प्रधान'' कहा जाता है। इसमें समस्त कार्यजात अव्यक्तरूप से विद्यमान रहते हैं, अतः यह ''अव्यक्त'' कहलाती है। प्रकृति की ''व्यक्त'' और अव्यक्त'' यानी साम्यवस्था और विकृतावस्था दो अवस्थाएँ हैं। उसे क्रमशः कार्य एवं कारण भी कहते हैं। सम्पूर्ण प्रपञ्चात्मक जगत् उसका व्यक्तस्वरूप हैं। जिससे सारा संसार उत्पन्न होता है और जिसमें यह लीन हो जाता है, वह उसका ''अव्यक्त'' स्वरूप है। यह प्रकृति सक्षम अथवा इन्द्रियातीत और नित्य है। यह सदसदात्मक है।[1]

महतत्त्व से प्रारम्भ कर विशेषपर्यन्त सभी भूत–भौतिक प्रपञ्च इसही के गर्भ में विराजमान रहते हैं।[2] इसमें जीवन के षटसंख्या के स्त्रोत प्रवाहित होते रहते हैं। इसका अधिष्ठाता पुरूष है।[3] यह प्रकृति त्रिगुणमयी है। यह सत्व, रजस्, और तमस् तीनों गुणों की साम्यावस्था स्वरूपा है।[4] इस स्थिति में कोई एक गुण किसी

***पूर्व शोधछात्रा प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

दूसरे गुण से विशिष्ट नहीं होता। विशेष के अभाव में सृष्टि भी नहीं होती। साभ्यावस्था वाली इस प्रकृति में गुणवैशम्य होने पर ही सृष्टि होती है। सर्ग के समय सम्पूर्ण जड़ जगत् प्रकृति के गर्भ से कार्यरूप में अभिव्यक्त होता है[5] तथा प्रलय के समय पुनः प्रकृति के गर्भ में विलीन हो जाता है।[6] अतः त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही समस्त जगत् का हेतु है। यह जगत् उसी का अंशमात्र है।[7]

विष्णु की मायास्वरूपा प्रकृति ही जगत् की माता एवं समस्त चराचर विश्व की ईश्वरी है। पृथ्वी, जल, सम्पूर्ण विद्याएँ और समस्त स्त्रियाँ उन्हीं की रूप है। संक्षेप में यह समस्त जगत प्रकृति का ही वैश्वरूप है।[8] इस प्रकार तीनों लोकों के सभी पदार्थ चाहे वे नित्य हों अथवा अनित्य, स्थूल हो अथवा सूक्ष्मातिसूक्ष्म, मूर्त हो अथवा अमूर्त उन सभी का आश्रय प्रकृति ही है।

प्रकृति के कार्यो से ही उसकी जगत कारणता का अनुमान किया जाता है, क्योंकि कारण के ही गुण काग्र में अनुगत रहते हैं। कारण की व्यक्तावस्था को कार्य कहते हैं। सुख–दुःख– मोहात्मक यह पञ्च– भौतिक जगत प्रकृति का कार्य है।[9] अतः त्रिगुणात्मिका प्रकृति इस जगत का मूलकारण है। भगवान शंकराचार्य ने भी अव्यक्त नाम वाली त्रिगुणात्मिका प्रकृति को ही जगत का मूलकारण स्वीकार किये हैं। इससे उत्पन्न कार्यरूप जगत का देखकर ही उसकी सिद्धि होती हैं। श्रीमद्भागवत् महापुराण में भी त्रिगुणात्मिका प्रकृति को ही जगत का मूलकारण स्वीकार किया गया है।[10]

सांख्य–दर्शन ने निम्नलिखित पॉच युक्तियों द्वारा प्रकृति की जगत् कारणता सिद्ध की है–

(1) इस जगत् के सारे पदार्थ सीमित, परिमित, अव्यापक, अनित्य तथा अनेक है। सीमित वस्तु के लिए असीमित पदार्थ का ही आधार अपेक्षित होता है। सीमित का आधार सीमित कदापि नहीं हो सकता। अतः जगत् के सब पदार्थों का मूल कारण अवश्य ही असीमित, अपरिमित, व्यापक, नित्य और एक होना चाहिए और यह कारण प्रकृति है।

(2) इस जगत् के सब पदार्थ सुख–दुःख–मोहात्मक है। अतः जगत् के पदार्थों की उत्पत्ति का एक ऐसा मूल कारण होना चाहिए, जिसमें उक्त विशेषताएँ उपलब्ध हों। ये विशेषताएँ त्रिगुणात्मिका प्रकृति में विद्यमान हैं। अतः प्रकृति ही जगत् का मूल कारण है।

(3) समस्त कार्य कारण की शक्ति से उत्पन्न होते है। अतः शक्तिमती प्रकृति वह मूलकारण है, जिससे यह सारा जड़–जगत् उत्पन्न होता है।

(4) व्यक्तावस्था में कार्य का कारण से विश्राम या भेद अनुभव सिद्ध है यह विभाग सिद्ध करता है कि अव्यक्त कारण से ही समस्तकार्य उत्पन्न होते है। यह अव्यक्त कारण प्रकृति है।

(5) अव्यक्तावस्था में समस्त कार्य बीजरूप से अपने कारण में विलीन हो जाते हैं। अथवा इस जगत् के समस्त पदार्थों में स्वरूगत एकता है, वैश्वरूप्य है, सामजस्य है और यह एकता मूलकारण प्रकृति से आती है। सांख्यकारिका में प्रकृति को अहेतुक, नित्य, व्यापक, निष्क्रिय, एक, निराश्रित, लिंगरहित, निरवयव, स्वतन्त्र, विवेकरहित, विषयरूपा, सामान्य, अचेतन तथा प्रसवधर्मिणी कहा गया है। सांख्य के इस मूल प्रकृति का कोई अन्यकारण नहीं है। यदि किसी तत्त्व को इसका भी कारण माना जायेगा तो ''अनवस्थादोष'' आ जायेगा, अतः सांख्याचार्यों ने इसे मूल प्रकृति माना है। पुरूष द्वारा क्षुभित होने पर सम्पूर्ण प्रपञ्चात्मक जगत् इसी से कार्यरुप में अभिव्यक्त होता है।

किन्तु मार्कण्डेय महापुराण में वर्णित माया या प्रकृति परब्रह्म परमात्मा की शक्ति है। यह शक्तिस्वरूपा प्रकृति परमात्मा से भिन्न न होकर अभिन्न है। यह सम्पूर्ण जगत् उसी शक्ति का लीला–विलास है। उसी शक्ति द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लयादि रूप व्यापार सम्पन्न होते हैं। यह प्रकृति बन्धन और मोक्ष का कारण भी है।[11] इस माया या प्रकृति द्वारा यह सारा संसार मोह–ममता में निमग्न है। इस संसार के सभी प्राणी–चाहे वे ज्ञानीमनुष्य हों अथवा पशु–पक्षी–मृगादि, सभी महामाया के प्रभाव से ममता के आवर्त वाले मोहसागर के गर्त में गिराये जाते रहते हैं।[12] यह वैष्वणी माया परमैवर्यशालिनी हैं। यह बड़े–बड़े ब्रह्मज्ञानियों के भी चित्त को बलपूर्वक अपनी ओर खीचं लेती है और उन्हें मोह–ममता के वशीभूत बना देती हैं। इस प्रकार सृष्टि–काल से ही इस संसार के सभी प्राणी महामाया के प्रभाव से मोहित थे, मोहित हैं ओर प्रलयपर्यन्त मोहित होते रहेंगे। यहीं प्रकृति विघा–रूप से मोह– ममता का उच्छेद कर मोक्ष भी प्रदान करती हैं। अतः इसे मोक्षदायिनी कहा जाता हैं।

संदर्भ सूची

1. प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महर्षयः।
   यदाहुः प्रकृतिं सूक्ष्मां नित्यां सदसदात्मिकाम्। मार्क0पु0 45/32
2. महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम्।। 30।। मार्क0 45.
3. पुरूषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम्।। 31।। मार्क0अ0 45.
4. सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सांख्यसूत्र, 1.64,
5. गुणभावात् सृज्यमानात सर्गकालेततः पुनः ।। 36।। मार्क0अ0 45.
6. यदा तु प्रकृतौयाति लयं विश्वमिदं जगत्।'' 3। मार्क0अ0, 50.
7. हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै–

र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत–
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या।'' 6।।
–मार्क0अ0–84.

8. देवी प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वश्वरी पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य।। 2।। मार्क0अ0–91.
आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपास्थितया त्वयैत–
दाप्याय्यते कृत्स्नमलङ्घयवीर्ये ।। 3।। मार्क0अ0–91.
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।। 4।। मार्क0अ0–91.
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।। 5।। मार्क0अ0–91.

9. यो भूतादिभवो भूतैः सुख दुखात्मको हि सः।''।।5।। मार्क0अ 0 38.

10. ''यत्त त्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्।। श्री मद्भागवतपुराण, 3.16.10.

11. सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः।। 4।। मार्क0अ0–91.

12. यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशु–पक्षि–मृगादयः।। 36।। मार्क0पु0अ0 89।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृग– पक्षिणाम् ।। 37।। मार्क0पु0अ0 81.